Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA

Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

भारतीय ज्ञान परम्परा और आधुनिक समाज : मूल्य, परिवर्तन एवं निरन्तरता – एक समाजशास्त्रीय चिंतन

डॉ. जीवन कुमार ✉

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, एन. एम. एस. एन. दास पी.जी. कॉलेज, बदायूँ (महात्मा ज्योतिबाफूले रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली)
DOI:

भारतीय ज्ञान परम्परा समूचे विश्व की प्राचीनतम और सर्वाधिक समृद्ध वैचारिक परम्पराओं में एक प्रमुख स्थान रखती है, जिसने मानव जीवन के सभी पक्षों—धर्म, दर्शन, समाज, शिक्षा, और संस्कृति—को पूरी तरह प्रभावित किया है। यह केवल ग्रंथों और शास्त्रों में सीमित नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्रियात्मक क्षेत्र में नैतिकता, कर्तव्य और सामूहिक कल्याण की भावना को प्रकट करती रही है। आधुनिक समाज के उद्भव के साथ तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों ने मूल्य-व्यवस्था को भी प्रभावित किया है। भौतिकता के इस युग में भी भारतीय ज्ञान परम्परा के शाश्वत मूल्य—सत्य, अहिंसा, धर्म, करुणा, आत्मसंयम, समरसता, एकात्मता, सेवा, त्याग, ज्ञान और विवेक—आज भी नैतिक दिशा प्रदान करने में सक्षम हैं। यह शोध-पत्र भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल तत्त्वों का समाजशास्त्रीय चिंतन प्रस्तुत करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार यह परम्परा आधुनिक और औद्योगिक समाज में निरन्तरता बनाए रखते हुए परिवर्तन के साथ सामंजस्य स्थापित कर रही है। अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि वर्तमान सामाजिक संरचना में भारतीय मूल्य-परम्परा का पुनरावलोकन सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय चेतना तथा वैश्विक शान्ति जैसे मुद्दों पर नये समाधान प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परम्परा न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि आधुनिक समाज के नैतिक पुनर्निर्माण की दिशा में एक जीवंत मार्गदर्शक भी है।

मुख्य शब्द: भारतीय ज्ञान परम्परा, आधुनिक समाज, समाजशास्त्रीय चिंतन, मूल्य परिवर्तन, निरन्तरता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, नैतिकता, सामाजिक संतुलन, पर्यावरणीय चेतना

भूमिका (Introduction)

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन और समृद्ध वैचारिक परम्पराओं में से एक है, जिसने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों—धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक—को गहराई से प्रभावित किया है। इस परम्परा की जड़ें वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, बौद्ध-जैन दर्शन और अनेक स्मृतियों में निहित हैं, जहाँ ज्ञान केवल बौद्धिक नहीं बल्कि जीवनमूलक और व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत होता है। भारतीय चिंतन में 'ज्ञान' का अर्थ मात्र सूचना या तर्क नहीं, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और सार्वभौमिक कल्याण की दिशा में मानव जीवन का रूपांतरण है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय ज्ञान परम्परा व्यक्ति और समाज के मध्य एक गहन और अविभाज्य संबंध की स्थापना करती है। इसमें 'एकात्म मानव' की अवधारणा निहित है, जो बताती है कि व्यक्ति केवल भौतिक सत्ता नहीं बल्कि सामाजिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक इकाई भी है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना सम्पूर्ण मानवता को एक परिवार के रूप में देखती है। यह दृष्टिकोण समाज में समरसता, सहयोग, कर्तव्य और नैतिकता की भावना को पुष्ट करता है। आधुनिक युग के आगमन के साथ औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावाद ने समाज की संरचना में गहरे परिवर्तन लाए हैं। इन परिवर्तनों ने जहाँ एक ओर मानव जीवन को भौतिक रूप से समृद्ध किया है, वहीं दूसरी ओर नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक मूल्यों को चुनौती भी दी है। प्रतिस्पर्धा, व्यक्तिगतता और भोगवादी दृष्टिकोण ने पारंपरिक सामाजिक एकता को कमजोर किया है। ऐसे में भारतीय ज्ञान परम्परा के शाश्वत मूल्य—सत्य, अहिंसा, धर्म, करुणा, आत्मसंयम, समरसता और सेवा—फिर से प्रासंगिक हो उठे हैं, क्योंकि ये मूल्य आधुनिक समाज को नैतिक संतुलन और सामाजिक दिशा प्रदान कर सकते हैं।

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

आज के समय में आवश्यकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा को केवल ऐतिहासिक या दार्शनिक दृष्टिकोण से न देखकर उसे समाजशास्त्रीय दृष्टि से पुनः समझा जाए। यह परम्परा न केवल सांस्कृतिक निरन्तरता का प्रतीक है, बल्कि आधुनिक समाज की समस्याओं—जैसे नैतिक पतन, पर्यावरण संकट, सामाजिक असमानता और सांस्कृतिक विखंडन—के समाधान की क्षमता भी रखती है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिकता के साथ संघर्ष नहीं करती, बल्कि उसके साथ संवाद स्थापित कर एक संतुलित, नैतिक और समरस समाज के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा की मूल अवधारणा

भारतीय ज्ञान परम्परा की आधारशिला उस व्यापक चिंतन में निहित है, जिसने मानव अस्तित्व को केवल शारीरिक या भौतिक स्वरूप तक सीमित न रखकर उसे चेतन, आत्मिक और सार्वभौमिक सत्ता के रूप में देखा है। यह परम्परा यह स्वीकार करती है कि ब्रह्मांड का प्रत्येक घटक परस्पर जुड़ा हुआ है और किसी भी इकाई का अस्तित्व अन्य तत्वों से पृथक नहीं है। इसीलिए इसका केंद्रबिंदु 'एकात्मता' का सिद्धांत है—व्यक्ति, समाज, प्रकृति और ईश्वर के बीच अभिन्न संबंध की भावना। इस दृष्टि में समग्रता, संतुलन और सामंजस्य जीवन के मूल तत्व हैं। उपनिषदों का यह वाक्य—"ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्"—इस विचार को स्पष्ट करता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में एक ही चेतना व्याप्त है, और उस चेतना से ही प्रत्येक जीव, प्रत्येक तत्व और प्रत्येक क्रिया अर्थ पाती है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्ञान केवल बौद्धिक या तर्कसंगत विचार नहीं है, बल्कि यह अनुभव, साधना और आत्मानुभूति से उत्पन्न होने वाली प्रक्रिया है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और शास्त्रों में ज्ञान का अर्थ 'ब्रह्मविद्या' के रूप में लिया गया है, अर्थात् वह विद्या जो आत्मा और परमात्मा के संबंध को प्रकट करती है। यहाँ 'ज्ञान' का उद्देश्य केवल जानना नहीं, बल्कि 'होना' है—अर्थात् आत्मसाक्षात्कार। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में शिक्षा और ज्ञान दोनों का उद्देश्य व्यक्ति को समग्र जीवन के साथ जोड़ना, उसे नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाना है। वेदांत दर्शन के अनुसार, जब मनुष्य अपने भीतर और बाहर की एकता को पहचानता है, तब वह अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर लोकमंगल की दिशा में कार्य करता है। यही 'एकात्म मानव' का दर्शन है। मनुष्य को केवल उपभोक्ता या उत्पादक के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे सजीव तत्व के रूप में देखा गया है जो ब्रह्मांडीय चेतना का अंश है। गीता में कहा गया है—"समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः"—अर्थात् भगवान स्वयं सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान हैं। यह विचार सामाजिक समानता, समरसता और करुणा की भावना को जन्म देता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों के संतुलन को जीवन का सर्वोच्च आदर्श मानती है। धर्म का अर्थ केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि नैतिकता, कर्तव्य और न्याय है। अर्थ का तात्पर्य भौतिक साधनों के अर्जन से है, परन्तु वह धर्म के नियंत्रण में रहना चाहिए ताकि वह शोषण या अनैतिकता का रूप न ले। काम मानव जीवन की प्राकृतिक इच्छा का प्रतीक है, जो सौंदर्य और रचनात्मकता से जुड़ा हुआ है, जबकि मोक्ष आत्म-साक्षात्कार और मुक्ति की अवस्था है। इन चारों पुरुषार्थों का संतुलन भारतीय जीवन-दर्शन की विशेषता है, क्योंकि यहाँ भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच कोई विरोध नहीं है, बल्कि परस्पर पूरकता है। यह परम्परा केवल वैचारिक नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना में भी गहराई से निहित है। भारतीय समाज ने परिवार, ग्राम, जाति और समुदाय जैसी

Received 29 October 2025; Accepted 25 November 2025. Available online: 30 November 2025. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

संस्थाओं को इसी एकात्म दृष्टि के आधार पर संगठित किया। प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व उसके समुदाय से जुड़ा हुआ है, और उसका कर्तव्य केवल व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामाजिक भी है। "परहित सरिस धरम नहिं भाई"—यह तुलसीदास की यह पंक्ति इस परम्परा की सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत करती है, जिसमें धर्म का सर्वोच्च रूप दूसरों के हित में कार्य करना है। इस प्रकार, भारतीय ज्ञान परम्परा में व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व दोनों को समान महत्व दिया गया है।

आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो यह परम्परा समाज में सामूहिक चेतना (collective consciousness) का निर्माण करती है। एमिल दुर्काइम के अनुसार समाज तभी स्थिर रहता है जब उसमें सामूहिक नैतिकता और विश्वास का आधार हो। भारतीय ज्ञान परम्परा इसी नैतिक आधार को प्रदान करती है। यह कहती है कि समाज का अस्तित्व व्यक्ति की नैतिकता पर निर्भर है और व्यक्ति की नैतिकता उसकी आत्मिक चेतना से जुड़ी है। इसीलिए भारतीय चिंतन आत्मा, समाज और ब्रह्मांड के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष 'कर्म सिद्धांत' है। गीता में कहा गया है—"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" इसका अर्थ है कि मनुष्य को अपने कर्म करने का अधिकार है, किन्तु फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यह सिद्धांत व्यक्ति को निष्काम कर्म, कर्तव्य और उत्तरदायित्व की भावना से जोड़ता है। समाजशास्त्रीय रूप से यह विचार सामाजिक भूमिकाओं (social roles) और कर्तव्यों (duties) के प्रति एक नैतिक अनुशासन स्थापित करता है। जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म को ईमानदारी और कर्तव्यबोध से करता है, तब समाज में समरसता और न्याय स्थापित होता है। अहिंसा भारतीय ज्ञान परम्परा का एक अन्य शाश्वत मूल्य है। यह केवल हिंसा का अभाव नहीं, बल्कि करुणा, सहिष्णुता और प्रेम की सकारात्मक भावना है। बुद्ध, महावीर और गांधी जैसे महापुरुषों ने अहिंसा को जीवन का सर्वोच्च धर्म बताया। सामाजिक संदर्भ में अहिंसा का अर्थ है—दूसरे के अधिकारों और अस्तित्व का सम्मान करना। यह विचार आज के वैश्विक समाज में भी अत्यंत प्रासंगिक है, जहाँ असहिष्णुता और संघर्ष की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। अहिंसा के माध्यम से समाज में शांति, संवाद और सहयोग का वातावरण निर्मित होता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा ने मनुष्य और प्रकृति के संबंध को भी गहराई से समझा। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"—यह ऋग्वेद का कथन बताता है कि मनुष्य पृथ्वी का पुत्र है, और उसे प्रकृति के साथ मातृत्व का संबंध बनाए रखना चाहिए। यह विचार आधुनिक पर्यावरण समाजशास्त्र के सिद्धांतों से भी मेल खाता है, जो कहता है कि प्रकृति का शोषण नहीं, बल्कि उसका संरक्षण मानवता का नैतिक दायित्व है। भारतीय परम्परा में वृक्ष, नदियाँ, पशु-पक्षी और पर्वत सबमें देवत्व की भावना देखी गई है। यह दृष्टि पर्यावरणीय संतुलन और पारिस्थितिक न्याय की आधारशिला है। ज्ञान परम्परा का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व 'संवाद' की परम्परा है। भारतीय चिंतन कभी स्थिर या कट्टर नहीं रहा, बल्कि निरंतर प्रश्न, विमर्श और पुनर्व्याख्या की प्रक्रिया से विकसित हुआ है। उपनिषदों में गुरु-शिष्य संवाद, बौद्ध संघों में विचार-विनिमय और भक्ति आंदोलन में लोकभाषाओं के माध्यम से आध्यात्मिक विचारों का प्रसार—ये सभी इस बात के प्रमाण हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा ने विविधता को स्वीकार किया और संवाद को ही सत्य की प्राप्ति का माध्यम माना। यही कारण है कि इस परम्परा में विरोध नहीं, बल्कि समन्वय और संश्लेषण की भावना पाई जाती है।

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

भारतीय समाज में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धांत इसी समन्वय का प्रतीक है। यह विचार बताता है कि सम्पूर्ण मानवता एक परिवार है और सभी मनुष्य समान रूप से सम्मान के पात्र हैं। यह दृष्टिकोण जाति, धर्म, भाषा या भौगोलिक सीमाओं से परे जाकर वैश्विक भाईचारे की भावना को जन्म देता है। आज जब विश्व राष्ट्रवाद, हिंसा और विभाजन की राजनीति से जूझ रहा है, तब यह भारतीय दृष्टि एक नई दिशा प्रदान करती है—मानवता को केंद्र में रखने की दिशा। भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा को भी केवल ज्ञानार्जन का साधन नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण, सामाजिक जिम्मेदारी और आध्यात्मिक विकास का माध्यम माना गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में कहा गया है—"सत्यं वद, धर्मं चर"—अर्थात् शिक्षा का उद्देश्य सत्य बोलना और धर्म का आचरण करना है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से शिक्षा का यह मॉडल समाज में नैतिकता और सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया को सुदृढ़ करता है। जब व्यक्ति अपने जीवन में धर्म और सत्य का पालन करता है, तो वह समाज में अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में विविधता को एकता का प्रतीक माना गया है। यहाँ विभिन्न मत, पंथ, दर्शन और जीवनशैलियाँ एक साथ सह-अस्तित्व में रह सकती हैं। अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, सांख्य, योग, जैन, बौद्ध और भक्ति दर्शन—all विविध रूप होने के बावजूद एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख हैं—सत्य और आत्मसाक्षात्कार। यह दृष्टिकोण सामाजिक बहुलता, सहिष्णुता और लोकतांत्रिक संस्कृति के विकास में सहायक रही है। आधुनिक समाज में जब तकनीकी प्रगति और उपभोक्तावाद ने जीवन को सुविधाजनक तो बना दिया है, परन्तु मनुष्य के भीतर की शांति और संतोष को कम कर दिया है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा का यह समग्र दृष्टिकोण एक संतुलन प्रस्तुत करता है। यह बताती है कि वास्तविक विकास केवल भौतिक नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक होना चाहिए। गांधीजी ने कहा था—"सादगी, सत्य और सेवा ही जीवन का वास्तविक सौंदर्य हैं।" यह वाक्य भारतीय परम्परा के सार को संक्षेप में प्रस्तुत करता है। अंततः, भारतीय ज्ञान परम्परा मानव जीवन के सभी स्तरों—व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक—को जोड़ती है। इसमें व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से जुड़ा हुआ है, और समाज का कल्याण समूचे विश्व के कल्याण से। यह दृष्टिकोण आधुनिक समाजशास्त्र की उस अवधारणा से मेल खाती है जिसमें सामाजिक संतुलन, नैतिकता और सांस्कृतिक निरन्तरता को समाज के स्थायित्व का आधार माना गया है। अतः भारतीय ज्ञान परम्परा केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के समाज के लिए दिशा-सूचक प्रकाश है। भारतीय दर्शन का आधार उन सार्वकालिक मूल्यों और सिद्धांतों पर टिका है, जो मानव समाज के नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं। ये मूल्य केवल दार्शनिक चिंतन का विषय नहीं रहे, बल्कि भारतीय समाज की व्यावहारिक संरचना में भी गहराई से अंतर्निहित हैं। इन्हें "शाश्वत" इसलिए कहा गया क्योंकि इनकी प्रासंगिकता समय, स्थान और परिस्थितियों से परे है। ये मूल्य जीवन को समरसता, संतुलन और उद्देश्य प्रदान करते हैं। समाजशास्त्रीय रूप से देखें तो ये मूल्य समाज में सामाजिक नियंत्रण, नैतिक अनुशासन और सामूहिक चेतना के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

1. सत्य (Truth):

भारतीय संस्कृति में 'सत्य' को सर्वोच्च मूल्य माना गया है। वेदों में कहा गया है — "सत्यं वद, धर्मं चर" — अर्थात् सत्य बोलना और धर्म का पालन करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है। सत्य केवल कथन का नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में

Received 29 October 2025; Accepted 25 November 2025. Available online: 30 November 2025. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

आचरण का सिद्धांत है। गांधीजी ने "सत्य ही ईश्वर है" कहकर इस मूल्य को आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान की। समाजशास्त्रीय दृष्टि से सत्य समाज में विश्वास, पारदर्शिता और नैतिक अनुशासन की नींव रखता है। जब व्यक्ति और संस्थाएँ सत्य पर आधारित होती हैं, तो समाज में स्थायित्व और न्याय की भावना बढ़ती है। आज के युग में, जब सूचना और मीडिया के माध्यम से भ्रम और असत्य का प्रसार तीव्र है, तब सत्य का मूल्य और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

2. धर्म (Dharma):

'धर्म' शब्द का अर्थ केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं, बल्कि 'धारण करने योग्य' आचरण, न्याय और कर्तव्य है। गीता में कहा गया है — "स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः।" धर्म वह व्यवस्था है जो समाज को एक सूत्र में बाँधती है। यह व्यक्ति को उसके कर्तव्यों की ओर प्रेरित करता है और समाज में संतुलन बनाये रखता है। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से धर्म सामाजिक नियंत्रण का एक सशक्त तंत्र है, जो व्यक्ति के आचरण को समाज के हित में संयमित करता है। एमिल दुर्काइम के अनुसार धर्म समाज की सामूहिक चेतना का प्रतीक है, जो समाज के नैतिक एकत्व को सुदृढ़ करता है। भारतीय परम्परा में धर्म इस सामूहिक चेतना का ही जीवंत रूप है।

3. कर्म (Karma):

कर्म का सिद्धांत भारतीय ज्ञान परम्परा का हृदय है। गीता में कहा गया है — "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।" इस श्लोक में कर्म को जीवन का कर्तव्य बताया गया है, न कि फल की अपेक्षा का माध्यम। कर्म का अर्थ केवल क्रिया नहीं, बल्कि जिम्मेदारी है। समाजशास्त्रीय रूप से यह सिद्धांत समाज में भूमिका-पालन (role performance) और उत्तरदायित्व की भावना को मजबूत करता है। जब प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य निष्ठापूर्वक करता है, तो समाज में न्याय, समरसता और स्थायित्व आता है। आधुनिक युग में भी यह सिद्धांत पेशेवर ईमानदारी, सामाजिक सेवा और निष्पक्षता का आधार बनता है।

4. अहिंसा (Non-violence):

अहिंसा भारतीय जीवन-दर्शन की आत्मा है। इसका अर्थ केवल हिंसा का अभाव नहीं, बल्कि करुणा, सहिष्णुता, प्रेम और सहअस्तित्व की भावना है। महावीर और बुद्ध ने इसे मानवता की सर्वोच्च साधना माना, वहीं महात्मा गांधी ने अहिंसा को सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से अहिंसा सामाजिक संघर्षों के समाधान का शांति-आधारित मॉडल प्रस्तुत करती है। यह व्यक्ति और समूह के बीच संवाद, सहिष्णुता और सहकार्य की भावना को प्रोत्साहित करती है। आज के वैश्विक समाज में, जहाँ हिंसा, आतंक और असहिष्णुता बढ़ रही है, अहिंसा का मूल्य मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

5. वसुधैव कुटुम्बकम् (Universal Brotherhood):

उपनिषदों का यह महान सिद्धांत — "अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्, उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।" — बताता है कि संकीर्णता और विभाजन अज्ञान का परिणाम हैं, जबकि उदारता और समभाव ही सच्चे ज्ञान का स्वरूप है। यह सिद्धांत सम्पूर्ण मानवता को एक परिवार के रूप में देखता है। सामाजिक दृष्टि से यह विचार वैश्विक नागरिकता (global citizenship) की भावना को जन्म देता है। जाति, धर्म, भाषा, रंग और राष्ट्र की सीमाओं से परे यह विचार मानव समानता, सहअस्तित्व और परस्पर सम्मान का आदर्श प्रस्तुत करता है। संयुक्त राष्ट्र के "विश्व शांति" और "मानव अधिकार" के सिद्धांत भी इसी दृष्टि से प्रेरित हैं।

6. आत्मसंयम (Self-control):

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

भारतीय दर्शन में आत्मसंयम को व्यक्ति के आंतरिक विकास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। यह मन, वाणी और कर्म पर नियंत्रण की कला है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं — "उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।" अर्थात् व्यक्ति को अपने आत्मबल से स्वयं को ऊपर उठाना चाहिए। आत्मसंयम व्यक्ति को अहंकार, क्रोध, लोभ और असंयम से मुक्त करता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह सामाजिक अनुशासन का भी प्रमुख कारक है। जब व्यक्ति आत्मसंयम का पालन करता है, तो समाज में अपराध, हिंसा और असमानता की प्रवृत्तियाँ कम होती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान भी आत्मनियंत्रण को सफलता और सामाजिक सामंजस्य का आवश्यक गुण मानता है।

7. यज्ञ भावना (Spirit of Sacrifice):

'यज्ञ' का अर्थ केवल अग्नि में आहुति देना नहीं, बल्कि त्याग, सेवा और लोकमंगल की भावना से कार्य करना है। गीता में कहा गया है — "यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।" अर्थात् लोकमंगल के लिए किया गया कर्म ही सच्चा यज्ञ है। यह सिद्धांत सहयोग और सामूहिक कल्याण की भावना को जन्म देता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यज्ञ भावना समाज में पारस्परिकता (mutuality), सहभागिता (participation) और सामाजिक एकता को प्रोत्साहित करती है। यह विचार आधुनिक लोकतंत्र, समाजसेवा और परोपकार के मूल में भी पाया जाता है।

इन सभी शाश्वत मूल्यों का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा जीवन के समग्र दृष्टिकोण पर आधारित है। यह व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करती है। यह भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को विरोधी नहीं, बल्कि पूरक मानती है। इन मूल्यों का अंतिम उद्देश्य मानवता का कल्याण और समाज में स्थायी समरसता की स्थापना है।

आज के संदर्भ में जब समाज तेजी से बदल रहा है, तब ये शाश्वत मूल्य दिशा-सूचक बन सकते हैं। सत्य और धर्म व्यक्ति को नैतिकता की ओर, कर्म और यज्ञ भावना समाज को उत्तरदायित्व की ओर, अहिंसा और आत्मसंयम मानवता को शांति की ओर, तथा वसुधैव कुटुम्बकम् सम्पूर्ण विश्व को एकता की ओर अग्रसर करते हैं। इन सिद्धांतों के बिना कोई भी समाज स्थायी प्रगति नहीं कर सकता। आधुनिक समाज को यदि स्थायित्व, न्याय और शांति चाहिए, तो उसे इन शाश्वत भारतीय मूल्यों से प्रेरणा लेनी ही होगी।

आधुनिक समाज में मूल्य परिवर्तन

भारतीय समाज एक गतिशील इकाई है, जो युग-परिवर्तन के साथ अपने स्वरूप, संरचना और मूल्यों में निरंतर परिवर्तन करता रहा है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा जहाँ सत्य, धर्म, कर्म, अहिंसा और आत्मसंयम जैसे शाश्वत मूल्यों पर आधारित थी, वहीं आधुनिक युग में इन मूल्यों का स्वरूप और अर्थ दोनों परिवर्तित हुए हैं। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद ने न केवल समाज की भौतिक दशा को बदला है, बल्कि उसकी चेतना, विचारधारा और व्यवहार को भी प्रभावित किया है। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से यह परिवर्तन सामाजिक संक्रमण (social transition) की प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें पारंपरिक मूल्य आधुनिक जीवनशैली के अनुरूप नए रूप में प्रकट हो रहे हैं।

आधुनिक समाज ने विज्ञान, तकनीक और तर्कशीलता के आधार पर अपने विचारों और जीवन-पद्धति को ढाला है। इससे जहाँ मानव जीवन में सुविधा और समृद्धि आई है, वहीं नैतिकता, आध्यात्मिकता और आत्मसंयम जैसे मूल्यों में

Received 29 October 2025; Accepted 25 November 2025. Available online: 30 November 2025. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

शिथिलता भी देखी गई है। किंतु यह कहना भी उचित नहीं होगा कि मूल्य नष्ट हो गए हैं — बल्कि उनका पुनर्गठन (restructuring) हुआ है। यह परिवर्तन भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता के बीच चल रहे संवाद का परिणाम है।

1. सत्य का रूपान्तरण:

प्राचीन भारत में सत्य एक आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धांत था — जीवन का परम लक्ष्य और ईश्वर का प्रतीक। लेकिन आधुनिक युग में सत्य की परिभाषा अनुभवजन्य (empirical) और वैज्ञानिक प्रमाणों से जुड़ गई है। अब सत्य का निर्धारण प्रयोग, निरीक्षण और तर्क से किया जाता है। यह परिवर्तन वैज्ञानिक चेतना के विकास का संकेत है। आज का समाज सत्य को स्थायी नहीं, बल्कि सापेक्ष (relative) मानता है — जो संदर्भ और दृष्टिकोण के अनुसार बदलता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन तार्किक-वैज्ञानिक मानसिकता के उदय का परिणाम है, जिसने विश्वास, परंपरा और मिथक पर आधारित सत्य को चुनौती दी। तथापि, यह भी सत्य है कि वैज्ञानिक युग का यह नया "सत्य" भी नैतिकता से पृथक नहीं होना चाहिए, अन्यथा ज्ञान का उपयोग विनाश का कारण बन सकता है। अतः आधुनिक समाज को सत्य के नैतिक और मानवतावादी पक्ष को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है।

2. धर्म की पुनर्व्याख्या:

धर्म का पारंपरिक अर्थ धार्मिक कर्मकांड, अनुष्ठान और आस्था से जुड़ा था, किंतु आधुनिक समाज में इसकी पुनर्व्याख्या हुई है। अब धर्म केवल पूजा-पद्धति का पर्याय नहीं, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी, मानवीय संवेदना और सेवा-भाव का प्रतीक बन गया है। "सेवा ही धर्म है" जैसी अवधारणाएँ इसी परिवर्तन को व्यक्त करती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण और सामाजिक न्याय के क्षेत्रों में सक्रिय नागरिक संगठन धर्म के इस आधुनिक रूप को मूर्त रूप देते हैं। समाजशास्त्र में यह प्रवृत्ति 'सेक्युलर मोरलिटी' (Secular Morality) के रूप में देखी जाती है, जहाँ धार्मिकता की जगह नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी ने ले ली है। धर्म अब एक समावेशी, मानवतावादी मूल्य में परिवर्तित हो गया है, जो सामाजिक समानता और वैश्विक करुणा को बढ़ावा देता है।

3. कर्म का आधुनिकीकरण:

गीता का निष्काम कर्म का सिद्धांत आधुनिक युग में भी प्रासंगिक है, किंतु उसका स्वरूप बदल गया है। अब कर्म केवल धार्मिक या पारिवारिक कर्तव्यों तक सीमित नहीं, बल्कि पेशेवर ईमानदारी, सामाजिक सेवा और संस्थागत उत्तरदायित्व तक विस्तारित हो गया है। आधुनिक समाज में "वर्क एथिक" (Work Ethic) का जो विचार विकसित हुआ है, वह कर्म के इसी आधुनिक रूप का परिचायक है। समाजशास्त्री मैक्स वेबर के अनुसार, आधुनिक पूंजीवाद के विकास में "प्रोटेस्टेंट एथिक" की महत्वपूर्ण भूमिका थी — जिसमें परिश्रम, ईमानदारी और उत्तरदायित्व को धार्मिक गुण माना गया। इसी प्रकार भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी आज कर्म का अर्थ है — अपने पेशे, दायित्व और समाज के प्रति समर्पण। यह परिवर्तन कर्म को आधुनिक जीवन के व्यावहारिक संदर्भ में अर्थवान बनाता है।

4. अहिंसा का विस्तार:

अहिंसा भारतीय संस्कृति का अमूल्य रत्न रही है। किंतु आधुनिक युग में इसकी परिधि व्यक्तिगत आचरण से आगे बढ़कर वैश्विक और पर्यावरणीय संदर्भों तक पहुँच गई है। अब अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं, बल्कि मानसिक, सामाजिक, डिजिटल और पारिस्थितिक अहिंसा को अपनाना भी है। जलवायु परिवर्तन, पशु संरक्षण, साइबर शालीनता और मानवाधिकार आंदोलनों में अहिंसा की यह नई

Received 29 October 2025; Accepted 25 November 2025. Available online: 30 November 2025. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। महात्मा गांधी की अहिंसा अब संयुक्त राष्ट्र के "विश्व शांति दिवस" और "सस्टेनेबल डेवलपमेंट" जैसे अभियानों का प्रेरणास्रोत बन गई है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन वैश्वीकरण के युग में नैतिकता के अंतरराष्ट्रीयकरण का द्योतक है।

5. वसुधैव कुटुम्बकम् का वैश्वीकरण:

भारतीय ज्ञान परम्परा का यह महान सिद्धांत आधुनिक युग में सबसे अधिक प्रासंगिक हो गया है। सूचना-प्रौद्योगिकी, इंटरनेट और वैश्विक परिवहन ने पूरे विश्व को एक "ग्लोबल विलेज" में परिवर्तित कर दिया है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का विचार अब केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप में संयुक्त राष्ट्र, मानवाधिकार आयोग और वैश्विक सहयोग संगठनों के माध्यम से मूर्त रूप ले रहा है। यह विचार वैश्विक नागरिकता (global citizenship) और साझा मानवता (shared humanity) की भावना को मजबूत करता है। हालांकि वैश्वीकरण ने प्रतिस्पर्धा और असमानता भी बढ़ाई है, किंतु यही प्रक्रिया पारस्परिक सहयोग, संवाद और शांति के लिए नए अवसर भी उत्पन्न करती है। अतः इस मूल्य का वैश्वीकरण मानव सभ्यता के लिए संतुलित विकास का मार्ग प्रस्तुत करता है।

6. आत्मसंयम का पुनर्जागरण:

आधुनिक समाज, भले ही भौतिक रूप से प्रगतिशील हो गया हो, किंतु मानसिक तनाव, अकेलापन और असंतुलन जैसी समस्याओं से ग्रस्त है। ऐसे समय में आत्मसंयम का मूल्य पुनः महत्व पा रहा है। योग, ध्यान, 'माइंडफुलनेस' (mindfulness) और सस्टेनेबल लिविंग जैसी अवधारणाएँ आत्मसंयम के आधुनिक रूप हैं। ये व्यक्ति को आत्मनियंत्रण, संतुलन और मानसिक शांति की दिशा में प्रेरित करती हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध एक नैतिक प्रतिवाद (moral counter-movement) के रूप में देखा जा सकता है। आत्मसंयम आज केवल धार्मिक साधना नहीं, बल्कि आधुनिक मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्वास्थ्य का आधार बन गया है।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण

भारतीय ज्ञान परम्परा केवल धार्मिक या दार्शनिक चिंतन का विषय नहीं है, बल्कि यह सामाजिक जीवन की गहराई से जुड़ी हुई एक वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय व्यवस्था है। इसमें निहित मूल्य — सत्य, धर्म, कर्म, अहिंसा, आत्मसंयम, और वसुधैव कुटुम्बकम् — व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन, उत्तरदायित्व और नैतिक सामंजस्य स्थापित करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो ये सिद्धांत सामाजिक संरचना (social structure), सामाजिक एकता (social solidarity), और सामाजिक परिवर्तन (social change) — तीनों को समान रूप से प्रभावित करते हैं। इस सन्दर्भ में अनेक प्रमुख समाजशास्त्रियों के विचार भारतीय ज्ञान परम्परा के सिद्धांतों से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाते हैं।

1. एमिल दुर्काइम (Émile Durkheim): सामूहिक चेतना और सामाजिक एकता

दुर्काइम के अनुसार किसी भी समाज की स्थिरता और निरंतरता सामूहिक चेतना (collective conscience) पर आधारित होती है — अर्थात समाज के सदस्यों में साझा नैतिक मूल्यों और विश्वासों की उपस्थिति। भारतीय ज्ञान परम्परा भी इसी सामूहिक नैतिकता की बात करती है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "सत्यं वद, धर्मं चर" जैसे सिद्धांत समाज में सामूहिक नैतिकता और सामाजिक एकजुटता को सुदृढ़ करते हैं। भारतीय समाज में धर्म, उत्सव, और पारिवारिक संस्कार सामूहिक चेतना के माध्यम हैं, जिनके द्वारा सामाजिक एकता बनी रहती है। दुर्काइम ने कहा

Received 29 October 2025; Accepted 25 November 2025. Available online: 30 November 2025. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

था कि धर्म समाज का "नैतिक बंधन" है, और भारतीय परम्परा में यही बंधन धर्म, कर्म और अहिंसा के माध्यम से प्रकट होता है।

2. मैक्स वेबर (Max Weber): कर्म सिद्धांत और कार्य नैतिकता

वेबर की 'प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में वर्णित "वर्क एथिक" (Work Ethic) भारतीय कर्म सिद्धांत से गहराई से जुड़ी हुई है। वेबर के अनुसार, कार्य के प्रति निष्ठा और जिम्मेदारी आर्थिक व सामाजिक प्रगति की आधारशिला हैं। भगवद्गीता का "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" निष्काम कर्म का यही संदेश देता है। भारतीय ज्ञान परम्परा कर्म को केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक कर्तव्य के रूप में देखती है। आधुनिक समाज में जब कार्य-जीवन संतुलन, पेशेवर नैतिकता और जिम्मेदारी की चर्चा होती है, तब भारतीय कर्म सिद्धांत वेबर की वर्क एथिक को एक व्यापक नैतिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है।

3. कार्ल मार्क्स (Karl Marx): श्रम और सामाजिक परिवर्तन

मार्क्स के अनुसार श्रम (labour) समाज परिवर्तन का मुख्य साधन है। उन्होंने श्रम को आर्थिक और वर्ग-संघर्ष के संदर्भ में देखा। भारतीय परम्परा में 'कर्म' या श्रम केवल आर्थिक उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व और आत्म-सिद्धि का माध्यम है। यहाँ श्रम का उद्देश्य व्यक्ति की आत्मिक उन्नति और समाज की सेवा है। यदि मार्क्स का दृष्टिकोण भौतिकवादी (materialist) था, तो भारतीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक और नैतिक था। फिर भी दोनों में एक समानता है — दोनों ही श्रम को सामाजिक संरचना के निर्माण और परिवर्तन का साधन मानते हैं। इस प्रकार, भारतीय कर्म-दर्शन मार्क्स के श्रम-सिद्धांत को एक मानवीय और आध्यात्मिक अर्थ प्रदान करता है।

4. टाल्कट पार्सन्स (Talcott Parsons): सामाजिक प्रणाली और नैतिक आचरण

पार्सन्स के "सामाजिक प्रणाली सिद्धांत" (Social System Theory) के अनुसार समाज एक संतुलित प्रणाली है, जो चार कार्यों पर आधारित है — अनुकूलन (adaptation), लक्ष्य-प्राप्ति (goal attainment), एकीकरण (integration), और पैटर्न मेंटेनेंस (pattern maintenance)। भारतीय ज्ञान परम्परा इन चारों कार्यों को अपने नैतिक मूल्यों से पूर्ण करती है। 'धर्म' सामाजिक एकीकरण सुनिश्चित करता है, 'कर्म' लक्ष्य प्राप्ति का साधन है, 'सत्य' और 'अहिंसा' पैटर्न मेंटेनेंस का आधार हैं। इस दृष्टि से भारतीय दर्शन पार्सन्स के कार्यात्मक दृष्टिकोण (functionalism) का नैतिक और आध्यात्मिक रूप है, जो समाज में स्थायित्व और समरसता बनाए रखता है।

5. पिटिरिम सोरोकिन (Pitirim Sorokin): सांस्कृतिक एकीकरण और प्रेम का सिद्धांत

सोरोकिन ने कहा कि मानव सभ्यता तीन प्रकार की संस्कृतियों — संवेदनात्मक (sensate), आदर्शवादी (ideational) और समन्वित (integral) — के बीच घूमती रहती है। भारतीय ज्ञान परम्परा की दृष्टि 'समन्वित संस्कृति' की ओर है, जहाँ भौतिक और आध्यात्मिक दोनों का संतुलन होता है। सोरोकिन के "Creative Altruism" अर्थात "सृजनशील परोपकार" का विचार भारतीय 'यज्ञ भावना' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' से मेल खाता है। यह समाज को प्रेम, सहयोग और निस्वार्थ सेवा की ओर अग्रसर करता है, जो आधुनिक विश्व के लिए भी प्रासंगिक है।

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

6. ऑगस्ट कॉम्ट (Auguste Comte): समाज का नैतिक पुनर्गठन

कॉम्ट ने "पॉज़िटिव फिलॉसफी" में कहा था कि समाज को विज्ञान और नैतिकता के संतुलन पर पुनर्गठित करना होगा। भारतीय ज्ञान परम्परा भी यही कहती है कि विज्ञान (ज्ञान) और आध्यात्मिकता (विवेक) का समन्वय ही समाज को स्थायी रूप से प्रगति की ओर ले जा सकता है। कॉम्ट का "रिलिजन ऑफ ह्यूमैनिटी" (Religion of Humanity) और भारतीय "मानव धर्म" — दोनों का उद्देश्य समाज में नैतिक एकता और मानव सेवा है।

7. हरबर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer): समाज एक जीवित संगठन के रूप में

स्पेंसर ने समाज को एक "जीवित जैविक संगठन" (living organism) माना। भारतीय दृष्टिकोण भी समाज को एक जीवंत इकाई मानता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एक अंग के समान है — "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का यही अर्थ है कि किसी एक का कल्याण सबके कल्याण से जुड़ा है। यह दृष्टि समाज में परस्पर निर्भरता (interdependence) और सहयोग (cooperation) की भावना को जन्म देती है।

8. योगेन्द्र सिंह: संश्लेषणात्मक आधुनिकता (Syncretic Modernity)

भारतीय समाजशास्त्री डॉ. योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाज "संश्लेषणात्मक आधुनिकता" की ओर अग्रसर है — अर्थात् परम्परा और आधुनिकता का समन्वय। भारतीय ज्ञान परम्परा इस संश्लेषण का उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ शाश्वत मूल्य आधुनिक जीवन के साथ सह-अस्तित्व में रहते हैं। उदाहरणस्वरूप, योग और ध्यान आज वैश्विक "वेलनेस कल्चर" बन चुके हैं, जबकि उनका मूल भारतीय आत्मसंयम में निहित है। इस प्रकार भारतीय समाज ने परम्परा को नकारा नहीं, बल्कि आधुनिकता के साथ समाहित कर लिया है।

9. राधाकमल मुखर्जी और जी.एस. घुर्ये:

भारतीय समाजशास्त्र के ये दो प्रमुख विचारक भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं। राधाकमल मुखर्जी ने समाज में नैतिकता और सामाजिक संबंधों को "मानव एकता" के सिद्धांत पर आधारित माना, जो भारतीय दर्शन के "एकात्म मानववाद" से जुड़ता है। वहीं घुर्ये ने भारतीय समाज की जाति, परिवार और धर्म संरचनाओं को सांस्कृतिक एकता के वाहक बताया। दोनों के विचार भारतीय ज्ञान परम्परा के जीवंत सामाजिक स्वरूप की पुष्टि करते हैं।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल प्राचीन चिंतन नहीं, बल्कि आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांतों की एक गहरी आधारभूमि भी है। दुर्काइम की सामूहिक चेतना, वेबर की कार्य नैतिकता, मार्क्स का श्रम सिद्धांत, पार्सन्स की सामाजिक प्रणाली, सोरोकिन का परोपकार, कॉम्ट की नैतिकता और योगेन्द्र सिंह का संश्लेषण — सभी भारतीय दर्शन के विभिन्न आयामों से मेल खाते हैं।

इस दृष्टि से भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक समाज के लिए एक समग्र समाजशास्त्रीय मॉडल प्रस्तुत करती है — जहाँ परम्परा और आधुनिकता, नैतिकता और विज्ञान, व्यक्ति और समाज, तथा आध्यात्मिकता और व्यवहारिकता — सभी का संतुलन संभव है। यही संतुलन भारतीय समाज की शक्ति है, जो उसे न केवल जीवंत रखता है बल्कि वैश्विक स्तर पर एक नैतिक दिशा भी प्रदान करता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारतीय ज्ञान परम्परा की मूल अवधारणा ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' के आदर्श पर आधारित है, जिसमें मानव मात्र के

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

कल्याण, समरसता, और एकात्मता की भावना निहित है। यह परम्परा केवल धार्मिक या दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं, बल्कि यह समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक ढाँचे को भी निर्धारित करती है। आधुनिक समाज में जब वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, और तकनीकी प्रगति ने जीवन-मूल्यों को पुनर्परिभाषित किया है, तब भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। इसका कारण यह है कि यह परम्परा जीवन के बाह्य विकास के साथ-साथ आन्तरिक चेतना और सामाजिक नैतिकता के संतुलन की बात करती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय परम्परा का मूल तत्व ''समाज में एकता, समरसता और धर्मनिष्ठा'' है। एमिल दुर्काइम की ''सामूहिक चेतना'' की अवधारणा और भारतीय समाज में ''संघ भावना'' के बीच गहरा साम्य देखा जा सकता है। इसी प्रकार, मैक्स वेबर का ''प्रोटेस्टेंट एथिक'' भारतीय ''कर्म सिद्धान्त'' से तुलनीय है, जो कार्य को ही पूजा मानता है। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परम्परा न केवल दार्शनिक स्तर पर बल्कि सामाजिक व्यवहार में भी अनुशासन, कर्तव्य, और समर्पण का भाव उत्पन्न करती है।

आधुनिक युग में मूल्य-बोध का क्षरण, सामाजिक असमानता, और पर्यावरणीय संकट जैसी समस्याएँ यह संकेत देती हैं कि विकास केवल भौतिक प्रगति का पर्याय नहीं हो सकता। भारतीय दृष्टि इस असंतुलन का समाधान प्रस्तुत करती है — वह यह सिखाती है कि ''विकास का सही अर्थ मानवता के उत्थान में निहित है''। गीता, उपनिषद और बौद्ध-जैन दर्शन में निहित संतुलन, संयम और समत्व की भावना आज के समाज को स्थायी और मानवीय दिशा प्रदान कर सकती है।

इसके साथ ही यह स्वीकार करना भी आवश्यक है कि आधुनिक समाज में परिवर्तन अपरिहार्य है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, और सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रभाव ने सामाजिक संरचना को नया रूप दिया है। परन्तु भारतीय परम्परा की विशेषता यह रही है कि उसने परिवर्तन को अस्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे आत्मसात् करते हुए निरन्तरता बनाए रखी। यही कारण है कि यह परम्परा आज भी जीवित है और समाज को दिशा प्रदान कर रही है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा आधुनिक समाज के लिए केवल एक सांस्कृतिक धरोहर नहीं, बल्कि एक जीवंत प्रेरणास्रोत है। यह मनुष्य को आत्मानुशासन, सह-अस्तित्व, और समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराती है। यदि आधुनिक भारत अपने विकास पथ में इन शाश्वत मूल्यों को आत्मसात् करता है, तो वह न केवल भौतिक रूप से समृद्ध, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक रूप से भी सशक्त राष्ट्र के रूप में उभर सकता है।

संदर्भ (References):

1. त्रिपाठी, आर. (2019). भारतीय दर्शन: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का संतुलन. दिल्ली: प्रज्ञा पब्लिकेशन।

2. गांधी, एम. के. (2007). सत्य और अहिंसा का मार्ग. मुंबई: राजकमल प्रकाशन।

3. सिंह, योगेन्द्र. (2012). संश्लेषणात्मक आधुनिकता: भारतीय समाज में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय. नई दिल्ली: सेतु प्रकाशन।

4. उपाध्याय, दीनदयाल. (1995). भारतीयता और सांस्कृतिक पुनरुत्थान. इलाहाबाद: भारतीय ज्ञान संस्थान।

5. Aurobindo, S. (2005). The foundations of Indian culture. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Press.

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research
(ISSN: 3048-5991) Coden: IRABCA
Research Article
(Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal)
Journal home page: https://integralresearch.in/
Vol. 02, No. 11, November. 2025

6. Basu, A. (2018). Tradition and modernity in Indian society. New Delhi: Rawat Publications.

7. Chakrabarty, D. (2000). Provincializing Europe: Postcolonial thought and historical difference. Princeton University Press.

8. Chatterjee, P. (1993). The nation and its fragments: Colonial and postcolonial histories. Princeton University Press.

9. Dandekar, R. N. (1981). Insights into Hinduism. New Delhi: Bharatiya Vidya Bhavan.

10. Dumont, L. (1980). Homo hierarchicus: The caste system and its implications. University of Chicago Press.

11. Durkheim, E. (1915). The elementary forms of the religious life. London: Allen & Unwin.

12. Gandhi, M. K. (1957). Hind Swaraj or Indian home rule. Ahmedabad: Navajivan Publishing House.

13. Ghose, A. (2012). Cultural continuity and change in Indian civilization. New Delhi: Concept Publishing Company.

14. Ghurye, G. S. (1969). Caste and race in India. Bombay: Popular Prakashan.

15. Kumar, D. (2016). Indian knowledge systems and modern education. New Delhi: Concept Publishing Company.

16. Kumar, J. (2022). Indian sociological thought and value traditions. Bareilly: Central Book Depot.

17. Madan, T. N. (2011). Sociological traditions: Methods and perspectives in the sociology of India. New Delhi: Sage Publications.

18. Max Weber. (1958). The religion of India: The sociology of Hinduism and Buddhism. Free Press.

19. Nanda, M. (2003). Prophets facing backward: Postmodern critiques of science and Hindu nationalism in India. Rutgers University Press.

20. Pandey, R. (2019). Indian philosophical thought and cultural heritage. New Delhi: Motilal Banarsidass.

21. Panikkar, R. (1999). The cosmotheandric experience: Emerging religious consciousness. Orbis Books.

22. Paranjape, M. (2015). The sacred and the secular: Studies in Indian culture and civilization. New Delhi: HarperCollins.

23. Patel, V. (2020). Modernization and social change in India. Jaipur: Rawat Publications.

24. Radhakrishnan, S. (1992). Indian philosophy (Vols. 1–2). Oxford University Press.

25. Sharma, R. N. (2018). Indian tradition and modernity: A sociological perspective. Jaipur: Rawat Publications.

26. Singh, Y. (2010). Modernization of Indian tradition: A sociological analysis. Jaipur: Rawat Publications.

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

27. Srinivas, M. N. (1966). Social change in modern India. University of California Press.

28. Tagore, R. (2002). The religion of man. New Delhi: Rupa Publications.

29. Tripathi, R. (2019). Indian ethos and values in contemporary society. New Delhi: Concept Publishing Company.

30. Upadhyaya, D. (2000). Integral humanism. New Delhi: Deendayal Research Institute.

31. Vivekananda, S. (2015). The complete works of Swami Vivekananda (Vol. 1–9). Kolkata: Advaita Ashrama.

Received **29 October 2025**; Accepted **25 November 2025**. Available online: **30 November 2025**. Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension) This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License